ग्लोबल वार्मिंग के शिकंजे में वैश्विक जलवायु

राय अवधेश कुमार श्रीवास्तव
11 वनस्थली , कैनाल रोड , देहरादून

1.0 चैन उड़ाती रिर्पोटें

4 दिसम्बर, 2006 को केंद्र सरकार के विज्ञान, प्रौद्योगिकी तथा पृथ्वी विज्ञान मंत्री कपिल सिब्बल ने राज्यसभा में यह जानकारी दी थी कि भारतीय वैज्ञानिकों ने पृथ्वी के तापमान में हो रही वृद्धि के कारण भारतीय जलवायु पर पड़ने वाले संभावित प्रभावों का मूल्यांकन किया है। भारतीय वैज्ञानिकों ने यह मूल्यांकन जलवायु परिवर्तन संबंधी अंतर्राष्ट्रीय पैनल द्वारा स्वीकृत ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन की विभिन्न वैश्विक प्रवृतियों पर आधारित जलवायु के पूर्वानुमानों के आधार पर किया है। कपिल सिब्बल ने इस मूल्यांकन के आधार पर यह भी बताया कि समूचे देश के लिए औसत वार्षिक तापमान का जो मॉडल तैयार किया गया है उसके अनुसार इस शताब्दी के अंत तक समूचे भारत में तापमान 2 से 5 डिग्री से. तक बढ़ जाएगा। इस मॉडल में वार्षिक तापमान परिवर्तनों की जो प्रवृत्तियाँ पाई गई हैं उनसे पता चलता है कि भारत उत्तरी राज्यों तथा प्रायद्वीप क्षेत्र के पूर्वी हिस्सों में तापमान में अधिक वृद्वि होगी। वैज्ञानिकों ने यह अनुमान लगाया है कि शेष वर्ष की तुलना में शीतऋतु तथा मानसून के बाद की ऋतुओं के दौरान तापमान अधिक बढ़ेगा।

उपरोक्त तथ्यों की जानकारी देने के साथ-साथ कपिल सिब्बल का यह भी मानना था कि वर्षा में होने वाले परिवर्तनों का पूर्वानुमान तापमान में होने वाले परिवर्तनों के पूर्वानुमान की तुलना में कम विश्वसनीय है। आज तक तापमान के संबंध में देखी गई प्रवृत्तियाँ मॉडल के पूर्वानुमानित परिणामों से गुणात्मक रूप में समानता रखती हैं लेकिन वर्षा के आंकड़ों से किसी महत्वपूर्ण प्रवृत्ति का पता नहीं चलता है। सिवाय इसके कि देश के मध्य और पश्चिमी हिस्सों में वर्तमान शताब्दी के मध्य तक आंशिक रूप से कम वर्षा हुई है।

कपिल सिब्बल के इस बयान को आम भारतीय किस रूप में लें। क्या यह माना जाए कि पृथ्वी के बढ़ते तापमान का भारतीय जलवायु पर बहुत प्रभाव पड़ने जा रहा है? क्या आने वाले वर्षों में समुद्री चक्रवातों की प्रबलता और बढ़ेगी? क्या हिमालय के ग्लेशियर और तेजी से पिघलेंगे? क्या पूरे देश में वर्षा की प्रवृत्ति पर अत्यधिक प्रभाव पड़ने जा रहा है और इससे देश के कई हिस्सों में सूखे की स्थितियाँ पैदा होंगी ? क्या पृथ्वी के बढ़ते तापमान के कारण सूरज की अवरक्त किरणों का प्रभाव और अधिक बढ़ जाएगा, जिससे लोगों में तरह-तरह की बिमारियाँ फैलेंगी ? क्या सागर जल का स्तर और अधिक बढ़ने जा रहा है जिसके कारण तटीय भूमि और सागर के छोटे-छोटे द्वीप डूब जाएंगे? क्या इससे पशु-पक्षियों, वन्य जीव, वनस्पतियों तथा जैव-विविधता पर बुरा प्रभाव पड़ने जा रहा है ? ये कुछ ऐसे प्रश्न है जो कपिल सिब्बल के इस बयान के भीतर छुपे हुए हैं , जिन्होंने आम भारतीयों की चिंताऐं और अधिक बढ़ा दी हैं।

अभी हम भारतीय इन चिंताओं से उबरे भी नहीं थे कि अप्रैल 2007 के पहले सप्ताह में 'इंटर गवर्नमेंटल पैनल आन क्लाइमेट चेंज' ने जलवायु परिवर्तन संबंधी अपनी जो रिपोर्ट जारी की है उसने तो हम सब की नींद ही नहीं बल्कि चैन भी उड़ाने वाली चेतावनी दे डाली है। इस रिपोर्ट के मुताबिक पृथ्वी का 2 से 3 डिग्री सेल्सियस तक बढ़ता हुआ तापमान 2050 तक मानव और पर्यावरण के लिए पूरे भूमंडल पर भयंकर आपदाऐं उत्पन्न करेगा। बढ़ते हुए तापमान के कारण जो पारितंत्र विभिन्न प्रजातियों के जीव तथा वनस्पतियों के जीवन यापन के लिए आवश्यक है वह धीरे-धीरे नष्ट होता जाएगा और लगभग 40 जीव तथा वनस्पतियों की प्रजातियों के समाप्त हो जाने का खतरा पैदा हो जाएगा। इस रिपोर्ट के अनुसार प्रतिवर्ष 29 मीलियन टन कार्बन डाई आक्साइड की वायुमंडल में मौजूदगी सागर जल को अम्लीय बना रही है जिसके कारण कोरल रिफ, पल्लवक तथा विभिन्न प्रकार की व्यापारिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण मछलियों की प्रजातियां भी नष्ट हो जाएगी। इस सदी के मध्य तक सागर जल के स्तर के बढ़ने, बाढ़ तथा सूखे, कुपोषण तथा बढ़ते तापमान के कारण विभिन्न प्रकार की बीमारियों के फैलने के कारण 200 मिलियन की आबादी या तो अपने निवास स्थल को छोड़ने के लिए मजबूर हो जाएगी या फिर इनमें से अधिकांश को असामयिक मृत्यु का सामना करना पड़ेगा। इस रिपोर्ट के अनुसार इस सदी के मध्य तक पृथ्वी का बढ़ता तापमान पूरे पारितंत्र को भंयकर रूप से प्रभावित करने जा रहा है।

जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभावों की समीक्षा करने वाली इस रिपोर्ट के अनुसार मानव जीवन पर सबसे अधिक बुरा प्रभाव जल के कारण पड़ने जा रहा है। पृथ्वी के कई इलाकों में पीने के पानी की समस्या से लोग जूझते नजर आएंगे। कहीं बाढ़ का प्रभाव होगा तो कहीं सूखा पड़ेगा। ग्लेशियर तेजी से पिघलेंगे, सागर का जल स्तर बढ़ेगा तथा सागर की अम्लियता भी बढ़ती जाएगी। 2099 तक पृथ्वी का तिहाई हिस्सा सूखे से प्रभावित होने जा रहा है। जलवायु में जब इस प्रकार के परिवर्तन होंगे तो कृषि भूमि तथा जल संसाधनों के नष्ट होने की पूरी संभावना होगी। ऐसे में बड़ी संख्या में लोग विस्थापन का दंश झेलने को मजबूर हो जाएंगे और 'पर्यावरणीय विस्थापितों' की यह बड़ी जमात हमारे सामने होगी। यह रिपोर्ट यह भी चेतावनी देती है कि अमेजन के वर्षा वन इस खतरे को झेलने के लिए मजबूर हो जाएंगे। इस क्षेत्र में वर्तमान समय में ही वर्षा में कमी पाई जाने लगी है। सागर के गरमाने से जल चक्र में भी परिवर्तन होगा। विष्वतरेखा के समीप के राष्ट्रों, विशेष रूप से अफ्रीका महाद्वीप, में अनाज की कमी होगी क्योंकि यहां की कृषि सबसे अधिक प्रभावित होने जा रही है। इस रिपोर्ट के मुताबिक जलवायु परिवर्तन को रोकने के लिए किए जा रहे प्रयास नाकाफी हैं और इनमें अब काफी विलंब भी होता जा रहा है।

इंटर गवर्नमेंटल पैनल आन क्लाइमेट चेंज (आईपीसीसी) की हालिया रिपोर्ट में कई ऐसे खुलासे हुए हैं, जिसने पर्यावरणविदों को नए सिरे से सोचने पर मजबूर कर दिया है। इस रिपोर्ट ने वैज्ञानिकों की 'हिमयुग' आने की संभावना पर विराम तो लगाया ही है, साथ ही तापमान में वृद्वि के नए कारणों पर रोशनी डाली है। रिपोर्ट में सन् 1850 से लेकर अब तक और सन् 2090 तक के वैश्विक तापमान परिवर्तन पर विस्तृत रिपोर्ट प्रस्तुत की गई है। रिपोर्ट में कहा गया है कि वर्तमान में विश्व का औसत तापमान 15.8 डिग्री सेल्सियस है। इस तापमान में प्रतिवर्ष 1.4 डिग्री का इजाफा हो रहा है।

अब तक यह माना जाता रहा है कि वन क्षेत्र में कमी ग्लोबल वार्मिग का मुख्य कारण् है, लेकिन रिपोर्ट में खुलासा हुआ है कि वनों को काटने से ग्लोबल वार्मिंग में केवल दो प्रतिशत का ही इजाफा होता है। वार्मिंग का मुख्य कारण ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में वृद्वि को माना जा रहा है। ग्रीन हाउस गैसों मे कार्बन डाई ऑक्साइड, नाइट्रो आक्साइड, सीएफसी, पीएफसी और सल्फर हेक्जाफ्लोराइड आदि शामिल हैं। इसमें सबसे हानिकारक सल्फर ग्रुप की गैस हैं।

गौरतलब है कि पृथ्वी के तापमान में हो रही वृद्वि के नतीजे आज सिर्फ भारत में ही नहीं अपितु दुनिया के तमाम हिस्सों में देखे जा सकते हैं। तापमान में हो रही वृद्वि के सिलसिलें में विगत 140 वर्षों से वैज्ञानिक अध्ययन कर रहें हैं और कई चौकाने वाले नतीजे अक्सर वैज्ञानिक पत्रिकाओं और समाचार पत्रों में प्रकाशित होते रहते हैं। मुख्य रूप से यह माना जाने लगा है कि अगले 100 वर्षों में पृथ्वी का तामपान 1.4 से लेकर 5.8 डिग्री सेल्सियस तक बढ़ जाएगा। पर्यावरण और मौसम का स्वरूप बिगड़ जाने का दोष सामान्यतः आधुनिक काल में हुए औद्योगिक विकास को दिया जाता है, लेकिन एक ताजा शोध से पता चला है कि पर्यावरण में मीथेन जैसी गैसों का स्तर आदिकाल से ही बहुत बढ़ा हुआ है, जिसके चलते मौसम के स्वरूप में भारी परिवर्तन हुआ है।

हालांकि पर्यावरण में ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन रिकॉर्ड मात्रा में पिछली कुछ सदियों के दौरान ही बढ़ा है, लेकिन औद्योगिक युग से पहले के पर्यावरण के बारे में बहुत ही कम जानकारियाँ हैं, जिसके चलते यह मान लिया जाता है कि मौसम परिवर्तन का सबसे बड़ा कारण आज के युग का औद्योगिक विकास ही है, लेकिन कार्बन के आईसोटोप्स में स्थित रासायनिक तत्वों से पुराने समय में पर्यावरण में मीथेन की मौजूदगी की मात्रा या स्थिति का पता चलता है। हाल में ही वैज्ञानिकों ने आर्कटिक क्षेत्र में गहराई पर स्थित बर्फ के नमूनों में विद्यमान गैसों के बुलबुलों का अध्ययन कर यह पता लगाया है कि विगत 650,000 वर्ष पहले से वर्तमान वातावरण में कार्बन-डाइ-ऑक्साइड और मीथेन का स्तर कई गुना अधिक हो गया है। ब्रिटेन में स्थित हेडली सेन्टर फॉर क्लाइमेट प्रीडिक्शन ने अपने अध्ययनों मे पाया है कि इस सदी के अन्त तक पृथ्वी का तापमान 3 डिग्री सेल्सियस तब बढ़ जाने की सम्भावना है जिसके कारण दुनिया के तमाम ग्लेशियर पिघल सकते हैं और सागर का स्तर 6 मीटर तक बढ़ सकता है।

2.0 वैश्विक जलवायु परिवर्तन के प्रमुख प्रभाव

सारी दुनिया में इस समय तूफान, बाढ़, सूखा तथा पक्षी एवं पौधों के व्यवहार में आ रहे परिवर्तन भविष्य में होने वाली आपदाओं के संकेत दे रहे हैं। तापमान परिवर्तन से जहां बीमारियों को पाँव पसारने का मौका मिलेगा वहीं दुनिया के विभिन्न हिस्सों में बाढ़ तथा भयावह गर्मी की सिलसिला भी तेज हो जायेगा। जिन इलाकों में आज ढंड पड़ रही है, वहां गर्म तेज हवायें चलेंगी।

विसकोंसिन विश्वविद्यालय में प्रोफेसर जोनथन ए. पैत्ज ग्लोबल वॉर्मिंग की समस्या को कई भयानक समस्याओं की जननी मानते हैं। अगर हम ग्लोबल वार्मिंग को नियंत्रित करने में सफल नहीं हुये तो हमारे सामने एक से बढ़कर एक खतरनाक स्वास्थ्य चुनौतियाँ पैदा होंगी जिनसे लड़ने पर हमें अरबों डॉलर खर्च करने पड़ेंगे। जल-जनित और वायु-जनित बीमारियों का प्रकोप बढ़ेगा। खासकर तापमान में बढ़ोत्तरी के कारण गर्मी से होने वाली मौतों की दर में भारी बढ़ोत्तरी होगी। गर्मी बढ़ने से सूखे की समस्या जटिल होगी। तब इंसान के सामने कुपोषण और संक्रमण प्रमुख समस्या बनकर खड़े होंगे। हमें इन चेतावनियों को गंभीरता से लेना होगा। ऐसा न हो कि हमारे पास बचाव के लिए वक्त ही नहीं बचे। इंग्लैंड, आयरलैंड, कनाड़ा, अमेरिका में तापमान परिवर्तन के दुष्परिणाम सामने आने लगे हैं।

अमेरिका के स्क्रीप इंस्टीट्यूट ऑफ ओसनोग्रेफी के वैज्ञानिकों ने सागर के करोड़ों तापमान परीक्षणों के आधार पर यह खुलासा किया है कि विगत 40 वर्षों में ग्रीन हाउस गैसों के प्रभाव के कारण सागर जल का तापमान न केवल सतह पर बल्कि 800 मीटर नीचे तक भी बढ़ गया है।

वायुमंडल में कार्बन-डाइ-ऑक्साइड की मात्रा में बढ़ोत्तरी से समुद्र की सतह अम्लीय होती जा रही है। यह समुद्री जीवन के लिए तबाही का सबब बन सकता है। ब्रिटेन नेशनल अकेडेमी ऑफ साइंस से संबंद्ध रॉयल सोसायटी द्वारा किए गए एक शोध के मुताबिक कार्बन-डाइ-ऑक्साइड की मात्रा तेजी से बढ़ती जा रही है। समुद्र प्रति वर्ष प्रति व्यक्ति एक टन कार्बन डाई ऑक्साइड का अवशोषण करता है जो कार्बन डाई आक्साइड को अवशोषित करने की उसकी क्षमता से काफी अधिक है।

उल्लेखनीय है कि कार्बन डाई आक्साइड ग्रीन हाउस गैसों का एक प्रमुख संघटक है। सोसाइटी के महासागर विशेषज्ञ जान राबेन के अनुसार जीवाश्म ईंधन जलाने वाले बिजली केंद्रों से उत्पन्न कार्बन डाई ऑक्साइड की मात्रा में वृद्धि होने से सागरों का तेजी से अम्लीकरण हो रहा है। इससे इनकी कार्बन डाई ऑक्साइड अवशोषित करने की क्षमता प्रभावित हो रही है। इससे समुद्री जल में कार्बनिक एसिड की मात्रा में खतरनाक बढ़ोत्तरी हो रही है। कार्बनिक एसिड समुद्री जंतुओं और और वनस्पतियों के लिए बेहद नुकसानदेह है। कार्बनिक एसिड जल एवं कार्बन-डाइ-ऑक्साइड के बीच प्रतिक्रिया से तैयार होता है। लाखों वर्षों में समुद्र में उतना कार्बनिक एसिड नहीं घुला जितना पिछले कुछ दशकों में घुला है। समुद्र मूलतः क्षारीय होते हैं। समुद्री पानी का नमकीन होना उसकी इसी क्षारीयता का परिणाम है। जैसे-जैसे औद्योगिक क्रांति जोर पकड़ रही है, समुद्र की सतह अधिक से अधिक अम्लीय होती जा रही है। अगर अभी से इस प्रक्रिया को रोका नहीं गया तो इसके भयावह परिणाम सामने आएंगे। आज समुद्री जल में अम्लता इस कदर बढ़ चुकी है कि समुद्री जल को अपने प्राकृतिक रूप में लौटने में हजारों वर्ष लग सकते हैं।

वैज्ञानिकों ने यह भी चेतावनी दी है कि ग्रीनहाऊस प्रभाव के कारण दुनिया भर में हजारों पक्षी विलुप्त हो सकते हैं। पिछला वर्ष ब्रिटिश समुद्र तटों पर प्रजनन करने वाले समुद्री पक्षियों के लिए सबसे खराब था, शायद उष्ण तटीय जलराशियों से पल्लवकों के पलायन के कारण। लाखों समुद्री पक्षियों का मुख्य आहार सैंडील्स नाम की छोटी मछली इन्हीं पल्लवकों पर जीवित रहती है। लेकिन इन मछलियों की संख्या में जबरदस्त कमी आई है। आरएसपीबी के शोध वैज्ञानिक रि ग्रीन और अन्य वैज्ञानिकों के नेचर पत्रिका में एक वर्ष पहले छपे लेख में चेतावनी दी गई थी कि अगर तापमान बढ़ा रहा तो जमीन पर रहने वाली 25 फीसदी प्रजातियों का भविष्य अंधकारमय है। रॉयल सोसाइटी फॉर प्रोटेक्शन ऑफ बर्ड्स (आरएसपीबी) के अनुसार पक्षियों के संरक्षण के लिए जरूरी है कि दुनिया भर में तापमान में हो रही बढ़ोत्तरी औद्योगिकीरण से पहले के मुकाबले केवल दो डिग्री सेल्सियस तक रहे। इसका अर्थ यह हुआ कि अगले दशक में दुनिया भर में हो रहे उत्सर्जन कम होने चाहिए।

आरएसपीबी के जलवायु परिवर्तन विभाग के प्रमुख जॉन लैंकबेरी के अनुसार इस बात के काफी अहम और चौंकाने वाले प्रमाण मिले हैं कि जलवायु परिवर्तन का वन्यजीवन पर बुरा प्रभाव पड़ रहा है। आगे होने वाला हल्का सा परिवर्तन भी कुछ प्रजातियों और पारिस्थित की तंत्रों पर विनाशकारी असर डाल सकता है। अगर हम स्वास्थ्य, भोजन, जलपूर्ति और अपने वन्यजीव के बारे में फिक्र करते हैं, तो हमें यह भी सोचना पडेगा कि हमे जलवायु परिवर्तन से किस तरह निपटना चाहिए।

ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी के विज्ञानियों ने जलवायु परिवर्तन से होने वाले बदलाव पर अध्ययन के बाद बताया है कि तापमान बढ़ने से अफ्रीका रेगिस्तान में तब्दील हो जाएगा। कम बारिश होने और लंबे समय तक धूल भरी आँधी चलने से कालाहारी की रेत खेती लायक भूमि में फैल जाएगी। जिससे रेगिस्तान का दायरा बढ़ता जाएगा। बालू के फैलने से कृषि योग्य भूमि का दायरा सिमट जाएगा। अगर खेती

लायक जमीन मरूथल मे बदलने लगी तो इसके घातक सामाजिक परिणामों का अंदाजा लगाया जा सकता है। अनुसंधानकर्त्ता प्रोफेसर डेविड थॉमस ने इस क्षेत्र के राजनीतिज्ञों से अपील की है कि वे विकास की ऐसी योजनाओं पर अमल न करें जिससे ग्लोबल वार्मिंग का खतरा और बढ़े।

3.0 पिघलते-सिकुड़ते ग्लेशियर : खतरे की घंटी

एक सर्वे के मुताबिक पूरी दुनिया के ग्लेशियरों के पिघलने की दर में इधर के वर्षों में काफी तेजी आई है। इससे वे ग्लेशियर भी अछूते नहीं रहें हैं जिन्हें स्थाई माना जाता रहा है। दक्षिणी अमेरिका तथा एशिया के विलुप्त होते ग्लेशियरों के कारण करोड़ों लोगों को जल आपूर्ति की समस्या से आने वाले एक दो दशकों के भीतर ही जूझना पड़ेगा। पृथ्वी के बढ़ते हुए तापमान के कारण तेजी से पिघलते ये ग्लेशियर अंततः समाप्त हो जाएंगे। इस समय पृथ्वी पर कोई भी ऐसा ग्लेशियर नहीं है जिसके आकार तथा समाहित बर्फ की मात्रा में वृद्धि हो रही हो। इस समय पृथ्वी पर मौजूद 99.99 प्रतिशत ग्लेशियर सिकुड़ते जा रहे हैं। यद्यपि जाड़े के दिनों में पड़ने वाली बर्फ के कारण न्यूजीलैंड तथा नार्वे के कुछ ग्लेशियरों के आकार को बढ़ते हुए देखा गया परंतु ज्यों ही गर्मी के दिन आए ये ग्लेशियर पिघलने लगे। ग्लेशियरों के सिकुड़ने में 2001 से अधिक तेजी आई है। 1961 तथा 1990 के बीच औसत रूप से दुनिया के ग्लेशियरों का अधिकांश बर्फ पिघल गया जिसके कारण सागर का जल स्तर प्रतिवर्ष 0.35 मि.मी. से 0.4 मि.मी. तक बढ़ गया है। 2001-04 में यह आंकड़ा 0.8 मि.मी. से 1 मि.मी. तक प्रतिवर्ष बढ़ गया । पिछले वर्ष 20 वैज्ञानिको के एक दल ने अपनी एक रिपोर्ट में यह बताया था कि इंडियन ग्लेशियर इतनी तेजी से पिघल रहे हैं कि आने वाले 15 से 25 वर्ष के भीतर इनमें से अधिकांश विलुप्त हो जाएंगे। इसके कारण कोलंबिया, पेरू, चिली, बेनूजोएला, इक्वाडोर, अर्जेन्टिना तथा बोलबिया के अधिकांश शहरों में पानी की आपूर्ति तथा खाद्य पदार्थों की कमी हो जाएगी। इसका प्रभाव भारत में भी देखा जाने लगा है। 1970 के बाद हिमालय के लगभग 30 प्रतिशत ग्लेशियर काफी सिकुड़ गए हैं। सिकड़ते हुए ग्लेशियरों के कारण पर्वतीय क्षेत्रों में कुछ ऐसी झीलों का निर्माण भी हुआ है जिनके टूटने से निचले क्षेत्रों में आकस्मिक बाढ़ आने की संभावना व्यक्त की जा रही है। इसी प्रकार उत्तरी अमेरिका के ग्लेशियर नेशनल पार्क में कभी 150 ग्लेशियर हुआ करते थे जिनमें से इस समय मात्र 27 ग्लेशियर ही बचे हैं। विशेषज्ञों के अनुसार यदि पृथ्वी का तापमान इसी प्रकार बढ़ता रहा तो ये सभी ग्लेशियर 2030 तक पूर्ण रूप से पिघल कर समाप्त हो जाएंगे।

जलवायु परिवर्तन का आर्कटिक क्षेत्र में 2004 में एक मूल्यांकन किया गया था। इस मूल्यांकन के आधार पर यह बताया गया था कि इस सदी के अंत तक आर्कटिक क्षेत्र का तापमान 4 से 7 डिग्री सेल्सियस तक बढ़ने की संभावना है। ऐसे में आर्कटिक क्षेत्र की हिमटोपी आने वाले 60 वर्षों में विलुप्त हो जाएगी। इसके प्रभाव में पूरी दुनिया के निचले तटीय इलाकों तथा कई एक द्वीपों के सागर जल के बढ़ते स्तर के कारण डूबने की स्थिति आ जाएगी। आर्कटिक के ग्लेशियर तेजी से पिघल रहे हैं और उत्तरी अटलांटिक सागर में जल की मात्रा बढ़ती जा रही है। इस प्रक्रिया के कारण सागर की धाराओं के प्रवाह पर कुप्रभाव पड़ रहा है और उत्तर की ओर आने वाली गर्म जल धाराओं की गति रूक रही है। इसके कारण वर्तमान की जलवायु प्रवृतियाँ प्रभावित हो रही है। इस अध्ययन के अनुसार पश्चिमी यूरोप में ठंडक बढ़ेगी जबकि आर्कटिक तथा विष्वतरेखीय क्षेत्र में गर्म होते जाएंगे। आर्कटिक क्षेत्र में ग्लेशियरों के पिघलने के कारण जो जल सागर में मिल रहा है वह अपने साथ उन शैवालों को भी बहा कर ले जा रहा है जो कि इस जमे हुए महाद्वीप पर वास करने वाले जीवों का मुख्य आहार है।

4.0 विलुप्त होती झीलें तथा नमभूमि

अभी हाल में ही अमेरिकी वैज्ञानिकों के एक दल ने साईबेरिया में स्थित झीलों का अध्ययन किया है। इस अध्ययन के अनुसार साईबेरिया की 2 बड़ी झीलें धीरे-धीरे सिकुड़ती जा रही हैं और लगभग 125 झीलें अपने अस्तित्व को खो चुकी हैं। इसका कारण इस वैज्ञानिक दल ने पृथ्वी के बढ़ते हुए तापमान को माना है। साईबेरिया में 1971 में 40 हैक्टेयर से भी बड़ी 10,882 झीलें थी जो 1997 में मात्र 9,712 ही रह गईं। इस प्रकार लगभग 11 प्रतिशत झीलें विलुप्त हो गई हैं। इस अध्ययन को इन वैज्ञानिकों ने साइंस पत्रिका में प्रकाशित किया है जिसमें यह निष्कर्ष निकाला गया है कि ऊँचाई वाले स्थानों, परमाफ्रास्ट नियंत्रित झीलों तथा नम भूमियों पर बढ़ते हुए तापमान का कुप्रभाव बराबर पड़ रहा है और इनमें से अधिकांश झीलें विलुप्त होती जा रही हैं।

5.0 मिट्टी का बदलता मिजाज

'नेचर टुडे' में प्रकाशित एक रिपोर्ट में कहा गया है कि मिट्टी में मौजूद कार्बन की मात्रा प्रतिवर्ष 0.6 प्रतिशत की दर से घट रही है। इंग्लैंड में हुए अनुसंधान से पता चला है कि यहाँ मिट्टी से 40 लाख टन प्रतिवर्ष की दर से कार्बन का उत्सर्जन हो रहा है। यह क्रम पिछले 25 साल से निरन्तर जारी है। अप्रत्याशित रूप से कार्बन के निकलने की समस्या इंग्लैंड और वेल्स में चारों ओर मौजूद है। इसके आधार पर वैज्ञानिकों ने आशंका जताई है कि समान भौगोलिक परिस्थितियों वाले दुनिया के दूसरे क्षेत्रों में भी यह समस्या मौजूद होगी।

क्रेनफील्ड यूनविर्सिटी के प्रोफेसर गुए किर्क के अनुसार इसके कारण ग्लोबल वार्मिंग के प्रभाव में तेजी आएगी। अपने सहयोगियो के साथ वर्ष 1978 से 2003 के बीच उन्होंने इंग्लैंड और वेल्स में 6,000 स्थानों पर सतह से 15 सेंटीमीटर नीचे तक मिट्टी के नमूनों का अध्ययन किया। इसका मकसद चारागाहों, कृषि योग्य भूमि, वनों, दलदलों, झाडियों वाली भूमि और बंजर भूमि में मौजूद क्षरण वाले तत्वों और जीवन में परिवर्तन का अध्ययन करना था। इस क्षरण ने कार्बन डाई आक्साइड के उत्सर्जन को कम करने के लिए बीते दिनों में हासिल तकनीकी उपलब्धियों के प्रभाव पर प्रतिकूल असर डाला है।

6.0 भारत में जलवायु परिवर्तन के प्रभाव

वैश्विक जलवायु परिवर्तन का भारत की वर्षा की प्रवृत्तियों पर पड़ने वाला कुप्रभाव सबसे अधिक चिंताजनक है। देश के ताजा आर्थिक सर्वेक्षण के अनुसार भारत की 60 प्रतिशत खेती मानसून पर निर्भर है। केवल 40 प्रतिशत कृषि क्षेत्र में सिंचाई की सुविधा अभीं तक उपलब्ध कराई जा सकी है। जैसा कि तापमान के बढ़ने संबंधी अध्ययनों में बताया गया है कि इसका असर वैसे तो पूरे देश पर पड़ेगा परन्तु मध्य तथा उत्तरी भारत में तापमान इस सदी के अंत तक 3 से 4 डिग्री से. तक बढ़ जाएगा। ये वही क्षेत्र हैं जहाँ से भारत को सबसे अधिक कृषि उत्पाद प्राप्त होते हैं। धान जैसी महत्वपूर्ण फसल के अलावा कपास, मूंगफली, सोयाबीन तथा गेंहूँ जैसी नगदी फसलें मानसूनी वर्षा के ही भरोसे रहती है। यदि सूखे की स्थिति पैदा होती है तो कृषि उत्पादों में भारी गिरावट आएगी। इससे लगभग 70 प्रतिशत अन्य वनस्पतियाँ भी प्रभावित होंगी क्योंकि विपरीत जलवायु की स्थितियों में अपने आप को जीवित रखना उनके लिए कठिन हो जाएगा। जैव-विविधता पर भी इसका बुरा प्रभाव पड़ना स्वाभावित है।

कुछ वर्ष पूर्व केन्द्रीय पर्यावरण तथा वन मंत्रालय के साथ मिलकर यू.के. के पर्यावरण, खाद्य तथा ग्रामीण मामलों के विभाग ने 3 वर्षों की एक शोध परियोजना पर कार्य किया था जिसमें पृथ्वी क बढ़ते तापमान का भारतीय जलवायु पर पड़ने वाले प्रभावों का मूल्यांकन किया गया था। इस अध्ययन के प्रारंभिक नतीजों से ज्ञात हुआ है कि समुद्री इलाकों मे सागर जल का स्तर प्रतिवर्ष 1 मिलीमीटर तक बढ़ सकता है और तेज हवाओं के साथ चक्रवाती तूफानों की बारम्बारता भी बढ़ सकती है। इस जलवायु परिवर्तन के कारण देश के कई राज्यों में मलेरिया का प्रकोप बढ़ सकता है और साथ ही साथ मानसून की मात्रा और इसके आने के समय में भी परिवर्तन हो सकता है। इस बीच भूवैज्ञानिकों तथा कई अन्य संस्थानों ने हिमालय में स्थित ग्लेशियरों के तेजी से पिघलने और पीछे हटने के विषय में भी जानकारियाँ दी हैं। इन सभी अध्ययनों से यह साफ हो जाता है कि आने वाले वर्षों में पृथ्वी के बढ़ते तापमान का असर भारतीय जलवायु पर अवश्य ही पड़ने वाला है।

मजे की बात यह है कि अभी से इस अनिष्ठ से आतंकित कई लोगों ने इसे महाराष्ट्र, आंध्रप्रदेश, कर्नाटक तथा बुदेलखंड में किसानों द्वारा की जा रही आत्महत्या से जोड़कर देखना शुरू कर दिया है। लोगों का यह मानना है कि किसानों द्वारा की जा रही आत्महत्याओं के पीछे कहीं न कहीं जलवायु परिवर्तन भी जिम्मेदार है। इसमें कोई दो राय नहीं है कि देश् के अधिकांश क्षेत्रों में कृषि कार्य वर्षा आधारित रहा है। जब कभी भी अल्प वर्षा के कारण सूखे की स्थितियाँ पैदा हुई हैं तब-तब कृषि तथा उससे जुड़े परिवार परेशानियों में पड़ते रहे हैं। यह एक सच्चाई है कि इन क्षेत्रों में विगत वर्षों में वर्षा की कमी के कारण कृषि कार्य अत्यंत ही प्रभावित हुआ है। परंतु जब विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी मंत्री इस बात का दावा करते हैं कि मानसून संबंधी पूर्वानुमान अभी भी विश्वसनीय नहीं है तब लोगों की चिंताएँ और बढ़ जाती हैं।

पृथ्वी के बढ़ते हुए तापमान का असर भारत के सुंदर वन के द्वीपों पर स्पष्ट दिखाई देने लगा है। इस डेल्टा क्षेत्र मं 102 द्वीप हैं जिनमें से 48 आबाद हैं। आज इन द्वीपों के प्राणियों तथ वनस्पतियों पर पृथ्वी के बढ़ते तापमान का खतरा मंडरा रहा है। इन द्वीपों में से अधिकांश में मृदा अपरदन तेजी से बढ़ा है और लगभग 2 द्वीप पूर्णतः जलमग्न हो चुके हैं।

7.0 जलवायु परिवर्तन से अछूता नहीं ही अंतरिक्ष

अभी तक ग्लोबल वार्मिंग के धरती के वातावरण मे बदलाव के लिए ही जिम्मेदार ठहराया जा रहा था। लेकिन यूनिवर्सिटी ऑफ साउथ हैंपटन के वैज्ञानिकों का एक नया अध्ययन दर्शाता है कि कार्बन डाई ऑक्साइड के बढ़ते स्तर का दुष्प्रभाव अंतरिक्ष में भी महसूस किया जा रहा है। आपको यह जानकर हैरानी होगी कि पृथ्वी पर जहां यह गैस तापमान के बढ़ने के लिए जिम्मेदार सिद्ध हो रही है, वहीं वायुमंडल के ऊपरी हिस्से में इसका असर बिल्कुल उल्टा हो रहा है। इस हिस्से यानी थर्मोस्फीयर का तापमान व घनत्व कार्बन डाइ ऑक्साइड की बढ़ती मात्रा के साथ कम हो रहा है। वैज्ञानिकों के लिए चिंता की बात यह है कि इसी हिस्से में कई प्रमुख उपग्रह व अंर्तराष्ट्रीय स्टेशन स्थित हैं। अमेरिका स्थित नैवल स्पेस लैबोरेटरी से मिली जानकारी के अनुसार थर्मोस्फीयर का वायुमंडलीय घनत्व अगले सौ वर्षों में लगभग आधा हो जाएगा। अंतरिक्ष में ढेर सारा बेकार मलबा भी पड़ा रहता है, जो बेकार हो चुके उपग्रह, धूल व मिट्टी तथा चट्टानों आदि के रूप में होता है। मलबे के टुकड़े भी पृथ्वी की कक्षा में परिक्रमा करते रहते हैं। वैज्ञानिकों के अनुसार अगर वायुमंडल का घनत्व विरल होने लगे तो ये टुकड़े अपनी कक्षा छोड़कर इन उपग्रहों से टकरा सकते हैं। पृथ्वी की परिक्रमा कर रहे अंतरिक्षीय पिंडों की टक्कर से दस डायनामाइट की छड़ों के बराबर तक शक्ति हो सकती है क्योंकि इनका वेग दस किलोमीटर प्रति सैकेंड से भी अधिक

होता है। ऐसे में एक सेंटीमीटर छोटा टुकड़ा भी भारी नुकसान का कारण बन सकता है। ऐसी टक्कर नुकसान की लगातार प्रक्रिया को भी जन्म दे सकती है, क्योंकि इस टक्कर के फलस्वरूप दोनों ही पिंडों के कई टुकड़े हो सकते हैं। ये टुकड़े फिर से किसी दूसरे उपग्रह से टकराकर उसे नुकसान पहुंचाएंगे। शोध दल की प्रारंभिक भविष्यवाणी के अनुसार बढ़ती कार्बन डाई ऑक्साइड के कारण पृथ्वी की सतह से दो सौ से लेकर दो हजार किलोमीटर की ऊँचाई पर स्थित वायुमंडल में कोलोजन कैसकेडिंग नामक प्रक्रिया में तेजी आएगी। उल्लेखनीय है कि एक ही कक्षा में अंतरिक्षीय पिंडों के बीच टक्करों की संख्या में वृद्धि हो जाने को कोलोजन कैसकेडिंग कहा जाता है। वैज्ञानिक कहते हैं कि इस सदी के अंत तक इन टक्करों की संख्या में सत्रह प्रतिशत तक की वृद्वि हो जाएगी जो उपग्रहों के अस्तित्व के लिए भारी मुश्किलों का कारण बन सकती है।

8.0 जलवायु परिवर्तन पर कैसे लगे लगाम।

इन समस्याओं से निजात पाने के लिए ही 1997 में क्योटो संधि की गई थी परंतु आज जो हालात हैं उससे तो यही लगता है कि क्योटो संधि का स्वीकारने के बाद भी दुनिया के विभिन्न देशों में पृथ्वी के जलवायु में हो रहे अनिष्टकारी परिवर्तनों को गम्भीरता पूर्वक नहीं लिया जा रहा हैं और विकसित राष्ट्र, विशेष रूप से अमेरिका तथा आस्ट्रेलिया अपने पैतरों से बाज नहीं आ रहे हैं।

इन्हीं बातों को ध्यान मे रखते हुए 28 नवंबर से 9 दिसंबर, 2005 में कनाड़ा के मॉन्ट्रियल शहर में 189 देशों के प्रतिनिधि ग्रीन हाऊस गैसों के उत्सर्जन से दुनिया के बढ़ते तापमान से जुड़े राजनैतिक, तकनीकी, विकासात्मक तथा व्यापारिक समस्याओं पर गहन विचार-विमर्श करने हेतु एकत्र हुए थे। मॉन्ट्रियल बैठक में मुख्य रूप से ग्रीन हाऊस गैसों के उत्सर्जन, जिसमे कार्बन-डाई-ऑक्साइड तथा मीथेन प्रमुख है, पर रोक लगाने पर विचार किया गया है।

इधर के वर्षों में जिस ढंग से लेटिन अमेरिका, अफ्रीका, आर्कटिक प्रदेश, यूरोप तथा दक्षिण-पूर्व एशिया तथा विभिन्न महासागरों में पृथ्वी के बढ़ते तापमान के प्रभाव से उत्पन्न विभिन्न प्रकार की आपदाओं मे बढ़ोत्तरी हुई है उसे देखते हुए यह आवश्यक है कि मॉन्ट्रियल बैठक में लिए गए निर्णयों को गंभीरता पूर्वक लिया जाए। आज न केवल भारत सरकार बल्कि विभिन्न राष्ट्रों को आपस में मिलकर कुछ ऐसे ठोस कार्यक्रम बनाने की जरूरत है जिससे इस संकट से दुनिया को उबारा जा सके। सतत् विकास की प्रक्रिया को क्षेत्रीय आधार पर सहयोग देकर ऐसे कार्यक्रमों को और अधिक प्रभावशाली बनाया जा सकता है। ऐसे में भारत अपनी आर्थिक, सांस्कृतिक तथा राजनैतिक विशेषताओं को ध्यान में रखकर उपयोगी तकनीक का विकास कर सकता है। जिनका उपयोग विकास की योजनाओं मे सुनिश्चित कर ग्रीन हाऊस गैसों के उत्सर्जन को भी कम किया जा सकता है।